आचार्य प्रवर श्री जिनराजसूरि (प्रथम) विरचित
श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रम्

म. विनयसागर

'वदन' का रूपक बनाकर वसन्ततिलका वृत्त में पार्श्वनाथ भगवान की स्तवना की गई है । इसमें स्थल-स्थल पर यमक का एवं अन्य अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है । इसकी १६वीं शताब्दी की प्रति श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार, जैसलमेर के सङ्ग्रह में प्राप्त होने से इसके प्रणेता श्रीजिनराजसूरि प्रथम ही प्रतीत होते हैं ।

श्री जिनराजसूरि जी सवा लाख श्लोक प्रमाण न्याय ग्रन्थों के अध्येता थे । आपने अपने करकमलों से सुवर्णप्रभ, भुवनरत्न और सागरचन्द्र इन तीन मनीषियों को आचार्य पद प्रदान किया था ।

सं. १४६१ में अनशन आराधनापूर्वक देवकुलपाटक (देलवाड़ा) में स्वर्गवासी हुए । देलवाड़ा के सा० नान्हक श्रावक ने आपकी भक्तिवश मूर्ति बनवा कर श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी से प्रतिष्ठित करवाई जो आज भी देलवाड़ा में विद्यमान है । इस मूर्ति पर निम्नलिखित लेख उत्कीर्णित है –

''सं० १४६९ वर्षे माघ सुदि ६ दिने ऊकेशवंशे सा० सोषासन्ताने सा० सुहड़ा पुत्रेण सा० नान्हकेन पुत्र वीरमादि परिवारयुतेन श्रीजिनराजसूरिमूर्तिः कारिता प्रतिष्ठिता श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनवर्द्धनसूरिभिः'' ।

प्रस्तुत है स्तोत्र :-

पार्श्वनाथ स्तोत्र

आनन्दनं सम[सुरा]सुर-मानवानां, संजीवनं शुभधियां सुरमानवानाम् ।
सौभाग्यसुन्दरतया भुवनाभिरामं, श्रीपार्श्वनाथवदनं विनुवामि कामम् ॥१॥

प्रातः पदार्थपटलीविहितावतारं, पश्यन्ति यो जिनमुखं मुकुरानुकारम् ।
कल्याणकारणमनन्त-मनोविशुद्धि-स्तेषां भवेदिह मनोभिमतार्थसिद्धिः ॥२॥

आलोकिते तव विभो ! वदने दिनेश-नैशंतिशा जगति मोहमयी विलेशे ।
पुण्यप्रकाशरचितेन तमोव्ययेन-सर्वर्तुसौहृदयुजा कमलोदयेन ॥३॥
सल्लोचनेषु घनतापभिदा रसालैः सारैः सुधामिव कुरन्नयनांशुजालैः ।
देवत्वदान[व?]सुधांशुरसौ निशान्त, आलोकि सेवकजनैः सुकृतीनकंतै ॥४॥
लावण्यकेलिलहरीललिते नवीने, वक्त्रे सुधासुरससुन्दर ! तावकीने ।
तृष्णातिरेकतरले नयने निलीये-होनन्ततापकलुषे त्यजतां मदीये ॥५॥
विस्मेरलोचनदले कमलानिवासे, निःसीम-सौरभभरे सुगुणावभासे ।
दृष्टिः सतां जिनपते ! वदनारविन्दे, नालीयते कथममन्दवचोमरन्दे ॥६॥
दूर्वकंनयनचन्दनचारुक्षिप्रं(?) राजद्विजालिरुचितन्दुलजालदीप्रं ।
सन्मङ्गलं दिशतु पुण्यफलाधिगम्यं, जैनेश्वरं वदनमक्षतपात्ररम्यं ॥७॥
नीलोत्पलामलदलायतनेत्रमानं, सद्दन्तभा कुसुमदामविराजमानं ।
पुण्यश्रिया लवणिमाम्बुभृदा सुलम्भः, स्यान्मे शिवाय जिन ते मुखपूर्णकुम्भ ॥८॥
एवं मया वदनवर्णनया विभादे, हर्षाञ्चितेन विहिता विनुतिः शुभाले ।
याचे दयेव **जिनराज** दयां निधेहि, दृष्टिं प्रसादविशदां मयि सन्निधेहि ॥९॥

॥ इति श्री पार्श्वनाथस्तोत्रं समाप्तमिति भद्रं भूयात् ।
कृतिरियं श्रीजिनराजसूरिणां ॥

C/o. प्राकृत भारती
१३-अे, मेन गुरुनानक पथ
मालदीयनगर, जयपुर